r'rh; v/;k;

करण का परिचयात्मक अध्ययन

मानव को ''कला'' प्रकृति द्वारा उपहार स्वरूप प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार प्रकृति द्वारा मानव शरीर की संरचना में क्रमिक परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार मानव ने प्रकृति से अपनी संस्कृति में नियमबद्ध रूप में कला के विभिन्न नये आयामों को प्राप्त किया है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मानव जाति की अभिरूचि प्रारम्भिक दौर से ही सौन्दर्य एवं कला चेतना में निहित थी। मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति द्वारा नवीन अभिव्यक्ति को जन्म देता आया है। भारत की कला–संस्कृति प्रत्यक्ष को अप्रत्यक्ष तथा सत्य को अपेक्षा के परस्पर सम्बन्ध रखती है।

भारतीय ग्रन्थों में कला को महत्व देने का उद्‌देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है। इसमें कला के प्रति कलाकारों के मनोरम कल्पनाओं को जनमानस के मनोभावों से जोड़कर उन्हें अपनी संस्कृति के प्रति जागृत करना भी है। कलाकृतियां समान रूप से समाज के सभी उपांगों को प्रभावित करती है। भारतीय कलादर्शन पर प्रकाश डाला जाये तो शिल्प कला को मूक–काव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सबसे पहले प्राचीन वैदिक ग्रन्थ ऋग्वेद में भारतीय कलाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख प्राप्त होता है। शिल्प परम्परा को वैदिक युग से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।[1] युगों से कला

---

1 ऋ0वे0 1017018

और कला की लोकमंगल कामना होती आयी है, इससे स्पष्ट होता है कि कला एवं कलाकृतियों का महत्व मानव समाज को अपरिमित सुखानुभूति कराते रहे हैं जिसका सम्पूर्ण श्रेय कला संरक्षण एवं संवर्धनकर्ता स्थानीय कलाकारों को जाता है। हमारे समाज कला–संस्कृति को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। समस्त कलाओं के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करने पर यही प्राप्त होता है कि सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक चेतना प्रकाशमान हो जाती है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यत्र–तत्र विद्यमान विभिन्न प्रकार के मन्दिरों पर चित्रित आकृतयाँ अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक हैं एवं उन आकृतियों पर समस्त चौंसठ कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जिनकी विचारधारा हमारे प्राचीन वैदिक धर्म ग्रन्थ वेद एवं पुराणों में पर्याप्त मात्रा में उल्लेख प्राप्त होता है।

1- efUnj %&

आप यदि भारत में हैं तो मंदिर से अवश्य ही परिचित होंगे। यहाँ शायद ही ऐसा कोई शहर, गाँव या कस्बा हो जहाँ मंदिर देखने को न मिले। आपने गौर किया हो तो देखा होगा कि अधिकतर लोग मन्दिर के सामने से गुजरने पर भी अपना सिर झुका लेते हैं, सम्भवतः आपको भी ऐसा ही अभ्यास हो। अपने व्यस्त जीवन में अनेक उलझनों के मध्य भी एक क्षण मन्दिर के समीप आते ही क्षणिक ही सही आप सम्पूर्ण सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर मन को एकाग्रचित्त करते हैं, यही मन्दिर का उद्देश्य है। आम जीवन में इसे देवालय भी कहा जाता है, जहाँ वेद–मन्त्रों का उचारण होता रहता है।

^eUukr xk;Ur% bfr eU=k%*, जिसका मनन किया जाए वह मन्त्र है। हमारे देश में मन्दिरों के निर्माण का कारण अति प्राचीन बताया गया है जिसका प्रमाण भारतीय प्राचीन ग्रन्थ रामायण व महाभारत से भी मिलता है। मन्दिर एक सकारात्मक ऊर्जा का केन्द्र है जिसके निर्माण में वास्तुकला का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसमें मूर्तियों की स्थापना के समय वैदिक मन्त्रोच्चार द्वारा प्राण प्रतिष्ठा किया जाता है। चूंकि मेरा शोध कार्य देवालयों में स्थापित भिन्न–भिन्न प्रकार के भाव–भंगिमाओं से सम्बन्धित शिल्प मूर्तियों से प्रदर्शित 108 करण पर आधारित है। इसलिए दक्षिण भारतीय प्रान्त तमिलनाडु में स्थापित प्रमुख मन्दिर एवं दक्षिण भाग में पाये जाने वाले मन्दिर जैसे–बृहदेश्वर, चितम्बरम्, कुम्भकोणम् आदि आज भी अपने प्राचीन स्वरूप को संजोये हुए है। इन मन्दिरों की दीवारों पर शिल्पियों द्वारा चट्टानों व पत्थरों को तराश कर उकेरी गयी मूर्तियाँ आज भी लोगों का मन मोह लेती है। प्राचीन काल में मन्दिरों को राजाओं द्वारा बनवाया जाता था, जिसका उद्देश्य दीर्घकाल तक अपनी कला–संस्कृति को बचाए रखना होता था। मन्दिर सकारात्मक ऊर्जा के स्रोत होने के साथ–साथ वैदिक ज्ञान के भी केन्द्र बिन्दु रहे हैं।

समस्त हिन्दू धर्मावलम्बियों का मूल स्तम्भ वेद प्राचीन भारतीय वाङ्मय की अमूल धरोहर है। साहित्य एवं कला की दृष्टि से ऋग्वेद का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पुरातन संपत्ति के रूप में चतुर्वेदों में ऋग्वेद को प्रथम स्थान प्राप्त है। वेद साहित्य के अमूल्य रत्न हैं साथ ही समस्त कलाओं के लिए भी बीज रूप एवं कलाओं के उद्गम स्रोत है। ऋग्वेद में गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों विधाओं का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है।

कला विद्या इन तीनों अंगों का प्रयोग प्रायः अभिन्न साहचर्य के रूप में प्राप्त होता है।

मन्दिरों में उकेरे गए मूर्तियों को नृत्य चित्र के समानान्तर रखा गया है क्योंकि शास्त्रीय ग्रन्थों में सम्भालना और उसके शुद्ध तत्वों को संवर्धन करने का प्रयास यत्र–तत्र करने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसे पथरीले पहाड़ों पर गढ़ने का एक और कारण यह भी रहा होगा कि कोई इन्हें रूपान्तरित न कर पाए। शास्त्रकार एवं विद्वानों ने भारत की संस्कृति को यथा सम्भव सुरक्षित एवं संवर्द्धित करने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के तकनीकियों का उपयोग कला के माध्यम से भी किया है। मूर्तिकला, चित्रकला, शिल्पकला, नृत्य–संगीत आदि कलाओं को लुप्त होने के भय से भी ऐसा किया गया होगा क्योंकि पत्थरों पर अंकित विभिन्न भाव–भंगिमाओं के माध्यम से भी समाज अपने आप को सुसंस्कृति की ओर पथ प्रदर्शित करने में सक्षम रहता है, शायद यही कारण भी रहा होगा मन्दिरों को आधार बनाने का क्योंकि मन्दिर जैसे पवित्र स्थान को कोई नष्ट नहीं करेगा क्योंकि इसमें सम्पूर्ण मानव समाज की आस्था जुड़ी होती है। निरन्तर देव स्थान में जाकर प्रार्थना करने से मनुष्य अपने जीवन के विभिन्न परिस्थितियों को सफल रूप में ग्रहण करने एवं उनके निराकरण करने में सक्षम महसूस करता है।

2- r:tkj dk ogn'oj efUnj %&

तंजोर का वृहदेश्वर मन्दिर का निर्माण चोल राजाओं द्वारा अपने साम्राज्य के वैभव एवं तत्समय के वास्तुशिल्प को प्रदर्शिन करने हेतु कराया

गया था। इस मन्दिर के अति विशाल आकार एवं उत्कृष्ट वास्तु शिल्प से यह स्पष्ट होता है कि तत्समय में दक्षिण भारतीय वास्तु कला कितनी समृद्ध रही होगी। इस मन्दिर को 150 फीट वर्गाकार एक ऊँचे चबूतरे पर निर्मित किया गया है। इस मन्दिर का क्षेत्रफल 500 x 250 वर्ग फीट है। इसके पूर्व 250 वर्ग फीट का आंगन बनाया गया है, जिसमें शत्रुओं द्वारा आक्रमण के समय समस्त प्रजा इस आंगन में सुरक्षित शरण ले सकें। मन्दिरों को इस प्रकार निर्मित किया जाता था कि किसी भी विपत्ति के समय प्रजा अपने परिवार के साथ मन्दिर में महीनों रह सकें एवं मन्दिरों में भोजन हेतु पर्याप्त अन्न भंडार उपलब्ध रहता था, जिससे किसी को कोई परेशानी न हो सके। ऊँचे–ऊँचे मन्दिरों के गर्भगृह का अंश, जिससे प्रदक्षिणा पथ ढका हुआ है। मन्दिर में हजारों कोठरियां एवं पूजा मन्दिर भी निर्मित की गयी है। मन्दिर के दीवारों पर ऊँपर से लेकर नीचे भाग तक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ उकेरी गयी है। इस आकृतियों में गणेश, विष्णु, देवी, भूदेवी और लक्ष्मी की प्रतिमाएँ दो पंक्तियों में विद्यमान है।

बृहद्देश्वर मन्दिर को राज–राजेश्वर मन्दिर के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि इसे 11वीं सदी में राजा चोल के द्वारा ग्रेनाइट पत्थरों से निर्माण कराया गया था। चोल राजाओं के वास्तुकला के प्रति प्रेम एवं शिव भक्ति के साथ–साथ यूनेस्कों के 'वर्ल्ड हेरिटेज साइट' तीन प्रमुख मन्दिरों में से एक हैं यह 13 मंजिला मन्दिर तंजौर के किसी भी कोने से उतना ही भव्य एवं अनोखा प्रतीत होता है। वस्तुतः हिन्दू अधिस्थापनाओं में मंजिलों की संख्या विसम न रखकर सम रखी जाती है।

राज राजा प्रथम को शिवपादशेखर की उपाधि प्राप्त थी। शैवमत के अनुयायी होने के साथ–साथ एक कुशल राजा भी थे। अपने धार्मिक सहिष्णुता के अनुरूप उन्होंने वृहदेश्वर मन्दिर के निर्माण के साथ ही उन्होंने अनेक बौद्ध मूर्तियों का निर्माण भी कराया था।

चोल शासकों के अनुसार इस मन्दिर की ख्याति राजराजेश्वर नाम से प्राप्त हुई परन्तु मराठा शासकों द्वारा इसे वृहदेश्वर नाम से स्वीकार किया गया है। वृहदेश्वर मन्दिर अपने आप में अनेकों रहस्य छिपाए विशाल हिमालय पर्वत की तरह खड़ा है। मन्दिर पर शिला लेखो ं की लम्बी श्रृंखला, मन्दिर में भव्य शिवलिंग चोल शासक के व्यक्तित्व एवं महानता को दर्शाता है। शिल्पकारों ने जिस अनूठे तकनीक का प्रयोग कर इस मन्दिर का निर्माण किया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम ही होगी क्योंकि मन्दिर का गुम्बद की प्रतिछाया पृथ्वी पर नहीं पड़ती जो अपने आप में आश्चर्यचकित करने वाली है। मन्दिर के शिखर पर स्वर्ण–कलश स्थित है जो सूर्योदय के समय मन्दिर की भव्यता की ओर बढ़ा देता है।

मन्दिर के उत्कीर्ण लेखों के अनुसार मन्दिर के मुख्यवास्तुविद कुंजार मल्लर राजराजा थे। उनके बाद उन्हीं के परिवार के लोग आज भी वास्तुशास्त्र, आर्किटेक्चर के क्षेत्र में कारीगर अपना नाम स्थापित किए हुए हैं। सम्राट राज–राजा के वृहदेश्वर मंदिर में प्रतिदिन जलने वाले दीपों में प्रयोग होने वाली घी की निर्यात आपूर्ति के लिए 4000 गायें, 30 भैंसे, 7000 बकरियाँ एवं 2500 एकड़ जमीन दान में दिये थे। मंदिर की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए 192 कर्मचारियों को रखा गया है। इस

मंदिर के निर्माण में केवल 5 वर्षों का समय लगा था, ऐसा इतिहासकारों ने उल्लेख किया है। (1004 ई0 से 1009 ई0)

विशिष्ट वास्तुकला से निर्मित यह मन्दिर ग्रेनाइट पत्थरों से बना है, जबकि इस क्षेत्र के आसपास के क्षेत्रों में ग्रेनाइट नहीं पाया जाता। मन्दिर के निर्माण में 1,30,000 टन ग्रेनाइट पत्थरों का प्रयोग हुआ है। यह आज भी रहस्य है कि इतनी अधिक मात्रा में ग्रेनाइट पत्थर कहाँ, और कैसे लाया गया। इस मन्दिर के गुम्बद पर 88 टन का पत्थर रखा गया है। आश्चर्य की बात यह भी है कि हजारों वर्ष पूर्व जब आधुनिक यन्त्र नहीं थे इतने भारी पत्थर को मंदिर के शिखर पर किस प्रकार स्थापित किया गया होगा?

दक्षिणी मन्दिरों के निर्माण में चोल राजा की मुख्य भूमिका रही है। चोल राजाओं का युद्ध दक्षिणी राजवंशों एवं राज्यों से होने के कारण यह चोलों का राजवंश बन गया। कई चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी सत्ता को सर्वोच्च बनाए रखा। दक्षिण के साथ ही साथ चोलों ने उत्तर भारत की गंगा घाटी तथा दक्षिण में लंका द्वीप तक विस्तृत होते गए। भारत के पूर्वी समुद्री स्थानों पर चीन के साम्राज्य अधिक उभरा, तभी इसे ''चोलमण्डप'' के नाम से भी जाना जाता है, ऐसा इतिहास में उल्लेख मिलता है।

परांतक ने मदुरै तथा लंका पर विजयी प्राप्त की। यह सभी शैव मतानुयायी होने के कारण चिदंबरम् के मन्दिर को सोने से ढक दिया।

राजराजा प्रथम ने अपने अपार शक्ति की चरम सीमाओं को पार करते हुए तंजौर में विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया, जिसे आज वृहदेश्वर एवं राजराजेश्वर मन्दिर के नाम से प्रसिद्धि हासिल है।

3- efUnj bfrgkl %&

मन्दिर को काव्यों एवं मूलमन्त्रों में देवालय, देवगृह, देवस्थान (जहाँ देवता निवास करते हैं) शब्दों से सम्बोधित किया जाता रहा है। मन्दिर शब्द का प्रयोग प्रारम्भिक ग्रन्थों में किया गया है, इसे ब्राह्मण में सबसे पहले किया गया है। प्रारम्भिक कई सारे ग्रन्थों में मन्दिर शब्द का उल्लेख प्राप्त होता आया है, जहाँ देवताओं का निवास होता है, उसे मन्दिर नाम दिया गया है।

मनुष्यों की बात करें तो वैदिक युग में जब मन्दिर का स्थापना नहीं हुआ करते थे तो मनुष्य प्रकृति को ही अपना देवता मानते थे, मूर्तिपूजा का विधान न होकर हवन–यज्ञ का प्रावधान हुआ करता था। इसीलिए वैदिक युग में प्रसिद्ध मन्दिर या मन्दिर की अनूठी कलाएँ देखने को प्राप्त नहीं होती हैं।

कालान्तर में महाकाव्य के समय वैदिक देवताओं को मूर्तिकला के माध्यम से उन्हें आकार प्राप्त हुआ और देवताओं को स्थापित करने के लिए मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ किया गया। यह श्रृंखला चलती चली गई और मन्दिरों के भी कई स्वरूप और बने। मन्दिर का शाब्दिक अर्थ मंद–मंद धातु–बिच प्रत्यय होता है। यह शब्द संस्कृत से लिया गया है और मंद शब्द विश्रांति का वाचक होता है। इस शब्द को देवगृह के रूढ माना गया

है। मन्दिर को अंग्रेजी भाषा में ''टेम्पल'' शब्द दिया गया जो कि मूलतः लैटिन भाषा टेम्पलम् (Templum) शब्द से प्राप्त होता है। लैटिन में यूनानी धर्म का प्रभाव बहुत ज्यादा रहा है। जिसमें मूर्ति स्थापित कर पूजा करने की परम्परा थी, जो जिस स्थान पर मूर्तिपूजा का प्रयोग किया जाता था, उसे टेम्पल नाम से सम्बोधित होना प्रारम्भ हुआ, मन्दिर को कई अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है। मन्दिर को अपने–अपने भाषा में मनुष्यों ने अपने श्रद्धा अनुसार नाम दिया है, जैसे तमिल में कोविल कन्नड़ में देवस्थान, तेलुगू में आलयम, मलयालय में क्षेत्रम्, अरबी में माबद, चीन में सिमिआओ, सिंहली में पांसल आदि।

कई मन्दिरों में मुख्य मंडप के अतिरिक्त लघु व अर्धमण्डप भी होते हैं जो कीर्तन, नर्तन इत्यादि कार्यों के लिए भी प्रयोग होते हैं। प्रथम मण्डप सभामण्डप दर्शन हेतु तथा द्वितीय मण्डप रंगमण्डप (कीर्तन, नर्तन) हेतु उपयोग होता है।

मन्दिर निर्माण में मूलतः पत्थरों का प्रयोग होता है परन्तु आधुनिक समय में ईंटों का भी प्रयोग किया जा रहा है। मौर्य काल के दौरान लकड़ी (काष्ठ) के मन्दिर भी बनाए गए थे। विशेषतः पहाड़ी क्षेत्रों में ऐसे मन्दिर अत्यधिक पाए जाते हैं। हमारे पड़ोसी देश नेपाल की राजधानी काठमांडौ का नामकरण काष्ठ मण्डप अर्थात (लकड़ी का मन्दिर) से काठमांडौ हुआ जिसमें अत्यधिक मात्रा में लकड़ी के साथ–साथ ईटों का भी समन्वय किया गया है।

4- 'kSfy;k¡ %&

भारतीय स्थापत्य कला शिल्प के अनुसार मुख्यतः तीन शैलियों के मन्दिर पाए जाते हैं –

(i) नागर शैली

(ii) वेसर शैली

(iii) द्रविड़ शैली

¼i½ ukxj 'kSyh ;k mŸkj Hkkjrh; efUnj 'kSyh %&

उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य वास्तुकला की जो शैली लोकप्रिय हुई उसे नागर शैली कहा जाता है। इस शैली की एक आम बात यह भी है कि सम्पूर्ण मन्दिर एक विशाल चबूतरे (वेदी) पर बनाया जाता है और उस तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं। आमतौर पर इन मन्दिरों में, दक्षिण भारतीय या द्रविण शैली के विपरीत, कोई चहारदीवारी या दरवाजे नहीं होते। मन्दिर में घुमावदार गुम्बद होता है, जिसे शिखर कहा जाता है। यद्यपि प्राचीन काल के मन्दिरों में एक ही शिखर होता था, लेकिन आगे चलकर इन मन्दिरों के आठ प्रमुख अंग है–

1. मूल आधार–जिस पर सम्पूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।
2. मसूरक – नींव और दीवारों के बीच का भाग।
3. जंघा – दीवारें (विशेष रूप से गर्भगृह आदि की दीवारें)
4. कपोत – कार्निस
5. शिखर – मन्दिर की शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का ऊपरी भाग।

6. ग्रीवा – शिखर का ऊपरी भाग।

7. वर्तुलाकार – आमलक शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का भाग।

8. कलश – शिखर का शीर्ष भाग।

नागर मन्दिर वर्गाकार होते हैं। वर्गाकार गर्भगृह की ऊपरी बनावट ऊँची मीनार जैसी होती है। इनके शिखर की रेखाएँ तिरछी और चारों ओर झुकी होती है तथा शीर्ष आमलक से सुशोभित रहता है। हिमालय एवं विंध्य–पर्वतमाला के मध्यस्थ क्षेत्र में नागर शैली विस्तृत है। प्रान्तीय भेद के अनुरूप ही इस शैली के मन्दिरों के विविध नाम है। उदाहरणार्थ– उड़ीसा के नागर–मन्दिरों को कलिंग, गुजरात के लाट तथा हिमालय में इनको ही पर्वतीय मन्दिर कहा गया है।[2]

भारतीय जीवन–पद्धति आध्यात्मिक दर्शन पर आधारित रही है। दर्शन का विचार पर ही धर्म की आधारशिला स्थापित है। अतः दर्शन के विचार एवं धर्म के अत्यन्त ही घनिष्ठ एवं पारस्परिक सम्बन्ध रहा है। धर्म के सर्वाधिक सहज एवं सरल अभिव्यक्ति का माध्यम मन्दिर ही है। मन्दिर भारतीय परम्परा की दृष्टि से स्थल एवं देवालय है। हर धर्म में उपासना के स्थल होते हैं पर देवालय भी हो ऐसा आवश्यक नहीं है। देवालय होने के लिए ईश्वर के सम्पूर्ण रूप में, साकार रूप में होना या मूर्ति का माध्यम में व्यक्त होना आवश्यक है। मन्दिर शब्द हिन्दू उपासना स्थल व देवालय के

---

[2] भारतीय कला का परिचय, भाग 1, NCERT (कक्षा–11), मंदिर स्थापत्य का इतिहास, डॉ0 सच्चिदानन्त सहाय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

लिए सर्वाधिक लोकप्रिय है परन्तु अन्य धर्म संप्रदायों में भी है जैसे–बौद्ध एवं जैन।

bfrgkl %&

मन्दिर शब्द संस्कृत में अधिक प्राचीन नहीं है। महाकाव्य एवं ग्रन्थों में मन्दिर शब्द की जगह देवालय, देवायतन, देवस्थान, देवगृह इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता रहा है। मंदिर का उल्लेख सर्वप्रथम 'शतपथ ब्राह्मण' में मिलता है।

वैदिक युग में प्रकृति देवता की उपासना की जाती थी, जिसमें पूजन क्रम या विधान था इसलिए देवालय के रूप में मन्दिर बनने के कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं प्राप्त होते।

'kCn mRifÙk %&

मन्दिर शब्द संस्कृत का है, जो मूलतः मंद्र (मन्द्र धा किरच् प्रत्यय) शब्द से बना है। अन्य भारतीय भाषाओं में मंन्दिर के लिए अलग–अलग शब्द मिल जाते हैं। तमिल में मन्दिर को 'कोविल', कन्नड़ में देवस्थान व गुडी, तेलगु में 'आलयम्' मलयालम् में 'क्षेत्रम्' शब्दों का प्रयोग होता रहा है।

efUnj dh LFkkiR; dyk %&

सामान्यतः हर मन्दिर में दो प्रकार की कक्षीय संरचना होती है। गर्भगृह तथा मण्डप, गर्भगृह में मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित रहती है। गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा हेतु स्थान होता है। इस स्थान से परिक्रमा हेतु पूजन के स्थान के अतिरिक्त श्रद्धालु को व्यवस्थित रूप से स्थान मिलता है।

गर्भगृह के ऊपर शिखर स्थित होता है, जो मन्दिरों में निर्माण शैली का प्रमुख निर्धारण है। शिखर एवं अधिष्ठान दोनों की संरचना अतिविशिष्ट होती है। अतः इस विशेष ज्यामितीय संरचना स्वरूप स्थापित किया जाता है। नागर शैली के मन्दिरों में उपशिखर प्रायः जुड़ते रहते हैं, जो अनंतता की ओर इंगित करते हैं। कलश के ऊपर ध्वज भी स्थापित किया जाता है।

¼ii½ cslj 'kSyh %&

बेसर का शाब्दिक अर्थ है 'मिश्रित' अतएव नागर एवं द्रविड़ शैली के मिश्रित रूप को बेसर की संज्ञा दी गई है। यह विन्यास में द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर शैली का होता है। दो विभिन्न शैलियों के मध्य स्थित होने के कारण ही स्वतः एक मिश्रित शैली स्फुटित हुई। इस शैली के मन्दिर विंध्य पर्वत माला से कृष्णा नदी तक निर्मित है। ये मन्दिर वृतायत या द्रव्यास्तवृत अर्थात् इनके आमने–सामने के दो पहलू सीधे होते है और अन्य दो झुके हुए होते हैं। बेसर मन्दिरों का अग्रभाग वर्गाकार तथा भीतरी भाग वृत्ताकार होना चाहिए।

¼iii½ nfoM 'kyh %&

यह शैली दक्षिण भारत में विकसित होने के कारण द्रविड़ शैली कहलाती है। तमिलनाडु के अधिकांश मन्दिर इस श्रेणी के हैं। इसमें मन्दिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के ऊपर शिखर भाग पिरामिड या प्रिज्य के आकार का होता है। इसमें क्षैतिज विभाजन हेतु अनेक मंजिल होती है। शीर्ष भाग पर कलश की जगह स्तूपिका होते हैं। इस शैली के मन्दिरों की प्रमुख विशेषता यह होती है कि यह ऊँचे तथा विशाल प्रांगणों से घिरे होते हैं।

5- fpncje %&

चिदंबरम् मन्दिर के शब्द में ही जैसा कि हमें प्रतीत हो रहा है कि शिव के चिदंबत स्वरूप को आत्मसार किया गया है। चिदंबरम् मंदिर के महत्व को इस प्रकार समझे कि शिव के पाँच मन्दिरों में से एक हैं। इस मन्दिर को शिव के नटराज स्वरूप को समर्पित किया गया है। इस मन्दिर की ऐतिहासिकता अमर हैं। देश के गिने चुने मन्दिरों में से इस मन्दिर की गणना होती है क्योंकि बहुत ऐसे मन्दिरों का निर्माण हुआ है जहाँ शिव और विष्णु के स्वरूपों को एक साथ देखा जाए। इस मन्दिर में कुल 9 द्वार हैं। इस मन्दिर को पवित्र माना गया है, इसके कण–कण में भारतीय शास्त्रीय मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार दक्षिण में मन्दिरों में निर्माणीत द्वार को गोपुरम् नाम से अंकित किया जाता है और सभी गोपुरम् को नृत्य आकृतियों से सुशोभित कर करण को शास्त्रीय प्रमुखता प्रदान की गई है।

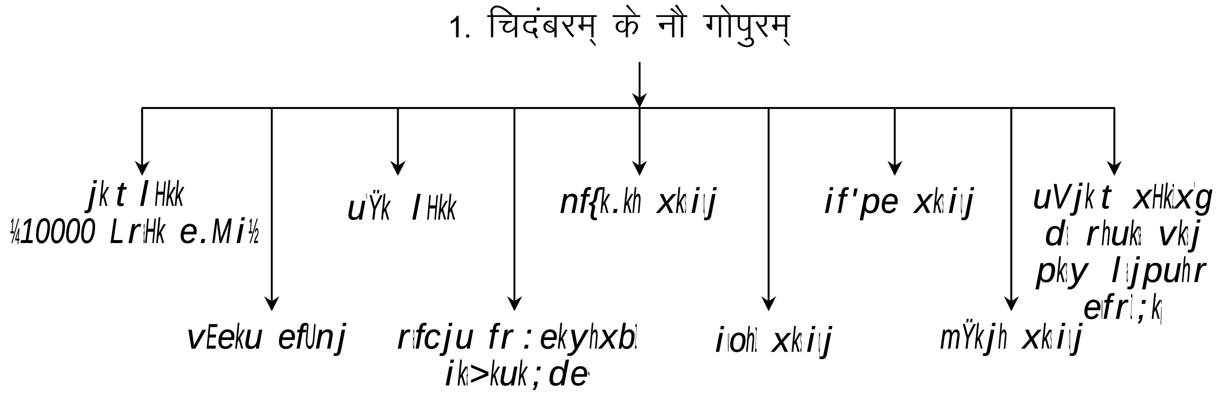

चिदंबरम् मन्दिर को विकसित करने में चोल पाँडव, विजय नगर के राजाओं ने 7वीं से 16वीं शताब्दी तक धीरे–धीरे बनाया है। नगर के लोगों, महाजनों का यह प्रमुख स्थान रहा है, इनकी लगन और अपने भारतीय शास्त्रों के प्रति अटूट विश्वास का उदाहरण है यह मन्दिर। इस मन्दिर को पूर्ण रूप से नाट्यशास्त्र का दिशा–निर्देशन के साथ बनाया गया है, साथ ही साथ मन्दिर के स्तम्भों और दीवारों को नटराज की 108 नृत्य करती करण की मुद्राओं से सुशोभित किया गया है। इस मन्दिर को भारत के अनोखे नायाब मन्दिरों में गिना जाता है।

¼i½ efUnj d fo'k"k vx ¾&

1. मन्दिर में अंकित शिव मूर्तियाँ इसके मुख्य आकर्षण का केन्द्र हैं।
2. इस मन्दिर की विशेषता नटराज की सुन्दर मूर्तियाँ हैं जो पूरे परिसर में अंकित की गई है।
3. मन्दिर में विधि पूर्वक किये जाने वाली पूजा आराधना जिनको दीक्षितगणों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

¼ii½ uVjkt efUnj esa iwtk fof/k %&

सर्वप्रथम नटराज जी की चरणपादुका को खास भवन में स्थापित किया जाता है एवं प्रभात बेला में इसकी पूजा की जाती है। तत्पश्चात् इस चरणपादुका को नटराज विग्रह के साथ रखा जाता है। फिर नटराज और शिवकामसुन्दरी को भोग अर्पित कर आरती की जाती है। इस पूजा विधि को ''षट्काल'' पूजा के नाम से जाना जाता है।

¼iii½ "kV~dky iwtk fof/k ,oa blds fu;e %&

1- ***dky lfU/k &*** यह पूजा प्रातः 7:30 बजे से शुरू की जाती है, इस पूजा में प्रमुख है कुंभ पूजा एवं हवन , भोग आदि को सम्पन्न कर आरती कर नटराज एवं देवी को नमन कर सम्पन्न किया जाता है।

2- ***f}rh; dkye~ &*** इस पूजा को 10:00 बजे शुरू की जाती है, जिसमें स्फटिक के शिवलिंग का अभिषेक कर सभापति नटराज का दुग्ध, चंदन, शहद से स्नान करवा कर आरती की जाती है। इस पूजा में भगवान की प्रतिमा सोने के समान प्रतीत होती है जब कि नटराज श्यामल हैं।

3- ***mfPp dkye~ &*** यह पूजा 'मध्यान्ह्' के नाम से भी परिचित है। इसमें भी दुग्ध, मधु और चन्दन से अभिषेक कर नटराज एवं देवी की विधि–विधानपूर्वक आरती की जाती है, इसके उपरान्त मन्दिर का कपाट बन्द कर दिया जाता है।

4- **lk;dky itu fof/k &** यह पूजा शाम 7 बजे शुरू की जाती है, स्फटिक शिवलिंग का अभिषेक कर, चिदंबरम् स्वरूप की अर्चना की जाती है। गर्भगृह को बंद कर किया गया पूजन हृदय, नेत्र एवं कर्ण के लिए अमृत के समान होती है, ऐसी मान्यता है।

5- **lk; j{kk &** देर शाम इस पूजा में स्फटिक शिवलिंग का अभिषेक करते है। कनक सभा में भगवान नटराज एवं शिवकामसुंदरी देवी का षोडशोपचार पूजा दीक्षितगणों द्वारा की जाती है। इसके उपरान्त आरती कर मंत्र पाठ एवं देवगान किया जाता है।

6- **v/ktke itk &** रात 9 बजे इस पूजा को कर पूरे दिन की पूजा समाप्त की जाती है। इसमें भी स्फटिक शिवलिंग का अभिषेक कर नटराज एवं शिवकामसुन्दरी देवी की आरती सम्पन्न कराई जाती है और नटराज की चरण पादुका को पालकी में रख कर शयनकक्ष में स्थापित कर दैनिक नित्य पूजा को सम्पन्न किया जाता है।

इस मन्दिर में वर्ष भर उत्सव का माहौल हुआ करता है, महाअभिषेक, ब्रह्मोत्सव, महाशिवरात्रि, शिवकामसुन्दरी देवी का उत्सव, आर्द्रदर्शनम्, पांड्य नायक मन्दिर उत्सव एवं प्रदोष उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है।

वास्तुकला शैली से बना यह पचास एकड़ का मन्दिर अपने इतिहास में रहस्यमयी परन्तु सुन्दर छवि छुपाए हुए हैं। मन्दिर का निर्माण विशिष्ट है, मंदिर में बनी आकृतियों से इसकी शोभा और उजागर होती है।

आन्तरिक मूर्तिकला एवं गुम्बद मन्दिर को भव्य रूप देते हैं। इस मन्दिर को नटराज मन्दिर के साथ–साथ यहाँ बनी मूर्तिकला को देख इसे भरतनाट्यम् के देव मन्दिर के नाम से भी जाना जाता हैं यह मन्दिर भारत के प्रमुख मन्दिरों में से एक है जहाँ शिव को लिंगम् के स्थान पर मानवरूपी प्रतिमा के रूप में स्वीकारा गया है एवं स्थापित किया गया। पड़ोसी देश नेपाल के प्रसिद्ध पशुपतिनाथ मन्दिर में भी शिव लिंगम् की मूर्ति न होकर वहाँ भी पञ्चमुखी शिवस्वरूप मूर्ति स्थापित है। मन्दिर में अलग–अलग इमारतों का निर्माण अलग–अलग युग काल में किया गया है। परन्तु रचनाकार ने एकता बनाए रखने के लिए इमारतों में अन्तर ना करते हुए कला और रचनाओं की नींव को स्थापित किया है।[3]

मन्दिर में पूर्वी गोपुरम के निर्माण एवं शिल्पकला के आकृतियों से यह 13वीं शताब्दी के शिलालेख प्राप्त होते हैं, उत्तरी गोपुरम् को 16वीं शताब्दी का माना जाता है। चिदंबरम् मन्दिर से जुड़ी कुछ कथाएँ भी प्रचलित हैं। कथन है कि राज राजा चोल को शिव के दर्शन पार्वती सहित नृत्य मुद्रा में प्राप्त हुये जहाँ हाथों में डमरू लिए नृत्य करते भगवान शिव को देख राज राजा चोल ने सभा बुलाई और मन्दिर के निर्माण कार्य को शीघ्र ही आरम्भ करवा दिया। यह मन्दिर 56 स्तम्भों से घिरा और ग्रेनाइट के पत्थरों से बना हुआ है। आठ–आठ फुट के 56 स्तंभ मानो राजसेना के समान प्रतीत होते

---

[3] प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर–डॉ0 वासुदेव उपाध्याय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना–800016, जनवरी 2003

हैं और उन पर बनी हुई सुन्दर आकृतियाँ अत्यन्त एवं आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।[4]

मन्दिर के निर्माण के समय में कई सारी छोटी–बड़ी बातों का ध्यान रखा गया है एवं उपासकों के सुविधा अनुसार गर्भगृह में परिक्रमा स्थान का भी निर्माण किया जाता था। दक्षिण भारतीय मन्दिरों में आँगन के मध्य मन्दिर निर्माण साथ में प्रदक्षिणा पथ का भी स्थान है।

तमिलनाडु के द्रविड़ पद्धति में मन्दिर स्थापत्य किये गये हैं। द्रविड़ शैली में दो प्रकार से मन्दिर निर्माण किया जाता था।

1. प्रस्तर के छोटे–बड़े पत्थर के टुकड़े जोड़ कर।

2. बड़ी–बड़ी पथरीली चट्टान को काट कर।

चिदंबरम् मन्दिर को भी बड़ी–बड़ी ग्रेनाइट के पत्थरों को जोड़ कर बनाया गया है। इस मन्दिर के आकृतियों को कुरेद कर निर्माणकर्ताओं ने खुबसूरती की परिकाष्ठा को अंजाम दिया है।

चिदंबरम् के चार गोपुरम् के करण की नृत्य करती आकृतियों का वर्णन खूबसूरत तरीके से दर्शाया गया है, सभी गोपुरम में लगभग आकृतियों की समानताएँ भी बराबर ही हैं। परन्तु कुछ स्थानों पर एक ही करण की आकृतियाँ बिखरी हुई सी प्राप्त होती है। यह कहाँ तक सम्मत है इसका

---

4 प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर–डॉ0 वासुदेव उपाध्याय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना–800016, जनवरी 2003

अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि मूर्तियों में बहुत सूक्ष्म अन्तर पाया गया है।

प्रसिद्ध नृत्यांगना एवं शोधकर्ता डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम् जी के अलावा अभी तक कि मेरी शोध में किसी भी पुस्तक या लेख में चिदंबरम् उत्तरी गोपुरम् की चर्चा नहीं प्राप्त हो सकी है, जिसमें इन्होंने अपने शोध के अनुसार बताया है कि उत्तरी गोपुरम् के आंकड़े में थोड़े विचलित प्राप्त होते हैं, क्रमशः इनके आंकड़ों की संख्या ना होने के कारण सभी नृत्य मूर्तियाँ चोल काल से सम्बन्धित नहीं है। सारी आकृतियों में नर्तन प्रकृति के अंगहार एवं नाट्य सम्बन्धित पैनल भी प्राप्त होते हैं।

गोपुरम् के बने करण की क्रमिक संख्या एवं उनके नाम इस प्रकार हैं–

पूर्वी गोपुरम् बाँयीं निकास मार्ग के करण

1. पिलास्टर में 8 करण हैं, इनके नाम तलपुष्पपुट, वर्तितम, वलितोरूकम, अपविद्धधाम, समनखम, लीनम, स्वस्तिकरेचितम, मण्डलस्वस्तिकम यह नाट्यशास्त्र में दिये गये क्रमानुसार बनाए गये हैं।

2. पिलास्टर में भी 8 करण हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं–निकुट्टक, अर्धनिकुट्टक, कटिछिन्न, अर्धरेचित, वक्ष स्वस्तिकम्, उन्मत्त, स्वस्तिक, पृष्ठस्वस्तिक।

3. पिलास्टर में 5 करण शामिल हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं—दिक्स्वस्तिक, अलात, कटीसम्, आक्षिप्तरेचित, विक्षिप्त क्षिप्तक।

4. पिलास्टर में 8 करण प्राप्त हैं, अर्धस्वस्तिक, अंचित, भुजंगत्रासित, उर्ध्वजानु, निकुंचित, मत्तल्लि, अर्ध मत्तल्लि, रेचकनिकुट्टक।

5. पिलास्टर में भी 8 करण है। जिनके नाम है, पादविद्धकम, वलितम, घूर्णित, ललित, डण्डपक्ष, भुजंगत्रस्तरेचित, नूपुर, वैशाखरेचित करण से इस पिलास्टर को सजाया गया है।

6. पिलास्टर में भी 8 करणों की संख्या प्राप्त होती है, भ्रमर, चतुर, भुजंगांचितक, डंडरेचितक, वृश्चिककुट्टन, कटिभ्रान्त, लतावृश्चिक, चिन्ना, इन आठ करण की आकृतियाँ क्रम अनुसार सुशोभित है।

डॉ0 पद्मा जी के शोध कार्य को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि इससे अच्छे टेबल बन ही नहीं सकते, जहाँ बहुत ही सुन्दर तरीके से स्पष्ट कार्य किया गया है, पैनल में करणों को दर्शाने के लिए। चिदम्बरम् मन्दिर के पिलास्टर में बनी आकृतियाँ इस मंदिर को बेहद आकर्षित बनाती है साथ ही इसके क्रम की बात की जाए तो नाट्यशास्त्र के अनुसार क्रमिक की गई है। मन्दिर में बनी आकृतियाँ तीर्थयात्री ही वह सैलानियों के अनुसार बनाई गई है। यह क्रम नीचे से ऊपर की तरफ जाता है। पश्चिमी गोपुरम के आकृतियों को देखा जाए तो थोड़ी छोटी आकार की है। वही उत्तरी गोपुर की आकृतियाँ तुलनात्मक बड़ी है, परन्तु कुछ सूक्ष्म तुलनात्मक बातें हैं जो इन्हें एक सा दर्शाने में मदद करती है जैसे सभी पिलास्टर लगभग 1 फुट

के हैं, चारो गोपुरों में दो संगतकार नृत्य करते आकृति के दोनों तरफ मौजूद हैं, आकृतियों की पोशाक और बालों की सजावट एक सी हैं। (सभी गोपुरम में पहला करण निकाल की तरफ नीचे की ओर बना हैं।) पश्चिमी गोपुरम सबसे पुराना है। मंदिर के दिवारों पर नटराज की कोई प्रतिमा नहीं है यह सभी प्रतिमाओं को अंतरतम मंदिर में ही देखा गया है, इसका मुख्य कारण करणों को विचारोत्तेजक माध्यम से प्रतिनिधित्व के रूप में बनाया गया है। शास्त्रीय नृत्य को मूर्ति, शिलालेख और भित्तिचित्र के माध्यम से समर्थन प्राप्त हुआ, साथ ही इसे राजाओं के शाही आयोग भी माना जाता है।

चिदम्बरम् मन्दिर के गोपुरम में भगवान शिव को अलग–अलग स्वरूपों से दर्शाया गया है, रथिकाओं में बनी शिव के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते है। यहाँ आकृतियों में कल्याण सुन्दरम्, वृषवाहन, वीणाधर और त्रिपुरान्तक रूप में नृत्य करती मूर्तियाँ विद्यमान हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी गोपुरम् पर गणित 108 नृत्य भंगिमाएँ आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के 4 अध्याय में मिलती है।[5]

चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर के पूर्वी व पश्चिमी गोपुरों के खण्डों में इन करणों को पाषाण पर उकेरा गया था और प्रत्येक मुद्रा के नीचे नाट्यशास्त्र से उचित छंद को भी लिखा गया है। एम0आर0 रवि के अनुसार नाट्यशास्त्र के पहले ही भाग के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना में

---

[5] P.V. Jagadisa Ayyar, OP cit. p. 207

कहते हैं कि ''प्रथम भाग में करणों के केवल चित्रण ही शामिल किया गया है।''[6] इस मन्दिर में अंकित मूर्तियों मुद्राओं में से केवल 93 मुद्राओं को ही बरामद किया जा सका है, शेष 15 या तो क्षतिग्रस्त थे या मरम्मत के दौरान खण्डों में तब्दील हो गए। ये आकृतियाँ लगभग 60 की संख्या तक भरत के नाट्यशास्त्र के क्रमानुसार पाई जाती है और बाकी 40 भरत के तो नहीं है। मानना है कि या तो मिस्त्री/पर्यवेक्षक से कोई चूक हो गई या फिर निर्माण कार्य के दौरान कोई फेरबदल हुई होगी। इन मूर्तियों को चोल वंश के विरूद्ध 1243 से 1273 ई0 में स्वतंत्र राज्य की स्थापना के समय की गई।

चिदम्बरम् के गोपुरम भव्य एवं ऐतिहासिक भी है, नौ मंजिलों का आकार लिए यह पूरे विश्व में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। सभागृह में 1000 से भी अधिक संख्या में स्तम्भ विराजमान है जिनकी भुजाओं पर यह मंदिर टिका हुआ है।

मन्दिर में 40–40 फुट ऊँचे पत्थरों को ताँबे की धातु से बनी पट्टिकाओं से जोड़ा गया है। शिखर को सोने से बनाया गया है, जो सूर्य की पहली किरण पड़ते ही ज्योतिर्लिंग की तरह चमक उठता है।

शिव और प्राकृतिक खुबसूरती के ताल मेल से बने ये पाँच पवित्र शिव मन्दिर 5 प्राकृतिक तत्वों को दर्शाते हैं–

चिदम्बरम् – आकाश

[6] M.R. Kavi, GOS, 1926, p. 69

काल हस्ती — वायु

जम्बुकेस्वरा — जल

कांची कामकोटिश्वर — पृथ्वी

अरूणाचलेस्वर — अग्नि

नृत्य को वास्तव में अलौकिक अभिनय माना गया है, जिसमें हमारे भारतीय इतिहास की पुनरावृत्ति है जिसके माध्यम से नर्तक/नर्तकी स्वयं एक विषय पर अभिनय कर अपनी एक विशेष भूमिका अदा कर सकता है। "प्रसिद्ध वैज्ञानिक ल्यूजियन के अनुसार, जगत से जुड़ा सभी महान रहस्य से आरम्भ होता है और नृत्य पर ही समाप्त होता है।"[7]

शिव द्वारा प्रस्तुत नृत्य को ताण्डव नाम दिया गया क्योंकि वह पुरुष प्रधान है। वैसे तो ताण्डव के भी 7 प्रकार पाए गए हैं जो शिव द्वारा अलग–अलग स्थिति और अवस्था में किया गया नृत्य है–

1. संहार ताण्डव से — सारे
2. संध्या ताण्डव से — सा नि ध
3. उमा ताण्डव से — म
4. गौरी ताण्डव से — ग
5. कालिका ताण्डव से — ध
6. त्रिपुर ताण्डव से — प रे

[7] संगीत एवं नृत्य–डॉ0 अंजुबाला भगत, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली–10004, द्वितीय अध्याय, पृ0सं0 75

7. आनन्द ताण्डव से – नि

इन स्वरों की निष्पत्ति इन सात ताण्डवों से हुई है ऐसी मान्यता है।

ताण्डव नृत्य करते शिव का स्वरूप अत्यंत ही प्रभावशाली प्रतीक होता है, परन्तु उससे भी अधिक प्रभावशाली है उसका सत्य जो जानने की जिज्ञासा हर संगीत जगत् के प्राणी में होती है। पृथ्वी को संहार होने से उसे बचाया और जगत् का कल्याण किया है। यह तो हर पुस्तक में मिलता है परन्तु उसका असली तत्व नटराज की मूर्ति को देख विद्वानों ने उसका सटीक अर्थ समाज को दिया है। भारतीय कला में ''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' का महत्व आज भी उतना ही है जितना कि शिव के होने का प्रमाण मिलता है। शिव और शक्ति दोनों ही चित्त स्वरूप है, लेकिन शिव निष्क्रिय तथा शक्ति क्रियामूलक है। डॉ0 कर्ण सिंह जी ने शिव को ब्रह्माण्डकीय नर्तक बताते हुए शिव रूप की व्याख्या बेहद सराहनीय रूप में करते हुए कहते हैं कि चतुर्भुज नटराज के ऊपरी दायें हाथ में डमरू है, ऊपरी बायें हाथ में वह पवित्र अग्नि, जिसमें समय आने पर ये सभी ब्रह्माण्ड समाहित हो जाता है। उनका निचला दांया हाथ अभय मुद्रा में है, जो जड़ एवं चेतन सभी को भयमुक्तता प्रदान करता है तथा गजहस्त की मुद्रा में निचला बायाँ हाथ, ऊपर उठे हुये बायें चरण की ओर संकेत करता है, जो प्रभु और भक्त को सोद्देश्य लय में समाहित कर परस्पर करते रहे।

6- dqaHkdks.ke~ %&

तंजावुर जिले में स्थित कुंभकोणम् मन्दिर चोल राजाओं के शासन काल में बना हुआ कला की सभी सीमाओं को पार कर अपने आप में एक अद्‌भुत इमारत के रूप में विराजमान है। इस मन्दिर में चोल मण्डल और राजराजपुरम् के समय के चिन्ह प्राप्त होते हैं। कुंभकोणम् मन्दिर को चोल राजाओं और तंजावुर के पहचान के रूप में संरक्षित किया गया। यह मन्दिर कावेरी नदी के किनारे स्थित अपने आप में कला और संस्कृति का एक सुन्दर स्वरूप है। इस मन्दिर में विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित की गई है। कला और संगीत के साथ कुंभकोणम् मन्दिर में नृत्य करती मूर्तियों को समझने और उन पर अध्ययन करने के लिए पहला कदम पी0आर0 श्रीनिवासन जी द्वारा किया गया, उन्होंने पुरातत्व विभाग के साथ 1955 में इस मूर्तियों के रहस्य से परदा हटाया। इसमें साफ तौर पर यह बताया गया है कि यहाँ पाई गई प्रासंगिक शिलालेख और चोल ग्रन्थों में प्रत्येक शिल्पों के नीचे संख्या (सीरियल नम्बर) नाम के साथ उत्कीर्णित हैं। सभी मूर्तियों में पुरुष की आकृति को दर्शाया गया है और सामान्य मानव की तरह ही इसमें दो हाथ वाली मूर्तियाँ ही सम्मिलित हैं।

आर0सी0 शिवाराममूर्ति द्वारा लिखित पुस्तक में कृष्ण जो कि विष्णु के अवतार माने गए हैं को कुंभकोणम् की सारंगपाणी मन्दिर में स्थित पाया गया और कृष्ण को सभी प्रकार के नृत्य का स्वामी मानते हुए आर0सी0 कहते हैं कि उन्हें शास्त्रीय नृत्य का भी ज्ञान था।

मन्दिरों पर देवी–देवताओं तथा पशु, मानव एवं व्याल आदि के अतिरिक्त नायिकाओं अप्सराओं की आकृतियाँ विशिष्ट प्रकार की है। यहाँ नायिकाओं में पूरी तरह क्रियाशीलता और शरीर रचना में वक्रता और ऐन्द्रिकता दिखाई देती है। शरीर के निचले भाग और हाथों का निर्माण वृत्ताकार रूप में हुआ है। मुख अण्डाकार, ठुड्डी गोल तथा नासिका, नेत्र, भौहों, होठों के निर्माण में विशेष ध्यान दिया गया है।

डॉ0 शिवराममूर्ति जी ने अपनी पुस्तक ''कला, विचार और साहित्य में नटराज'' के एक अंग में कुंभकोणम् में प्रयुक्त करणों की शिल्प चित्रण की अनुसूची अंकित की है। इस मूर्तिकला की प्रशंसा करें तो पूरे भारत देश में हैं। इस श्रृंखला में मूर्ति को देखते ही ''तलपुष्पपुट'' करण जैसा आभास होता है जैसा कि वृहदेश्वर मन्दिर में शिव मूर्ति को देखकर ज्ञात होता है। टी0एन0 रामचन्द्र जी के अनुसार यह पुरुष की मूर्तियाँ सूत्रधार की है क्योंकि मन्दिर के चित्र में एक मूर्ति के नीचे ही यह अंकित भी किया गया है जहाँ सूत्रधार लिखित रूप से प्रमाणित है।

यह तो प्रमाणित है कि सारिगपाणिस्वामी मन्दिर में स्थित मूर्तियाँ करण के पुष्टि होने के बाद के समय की बनी है, इससे मूर्ति कलाकार के विवरण में भी कोई नाम सामने नहीं आता है।

इस मन्दिर में विष्णु (श्रीकृष्ण) की मूर्तियाँ प्राप्त होती है। यहाँ भी चिदम्बरम् और बृहद्देश्वर की भाँति गोपुरम् में नृत्य करती आकृतियाँ प्राप्त होती हैं। यहाँ पर मन्दिरों का आकर्षण केन्द्र हाथी–घोड़ों द्वारा खींचे कई रथ पर सवार भगवान कृष्ण के वंशों को दर्शाया गया है। कृष्ण के नृत्य

मुद्राओं में करण को स्पष्ट रूप से दर्शाते हुए कलाकार ने सारंग रूपी हिरण को भी अंकित किया है तभी इस मन्दिर को विशेष रूप से सारंगपाणी मन्दिर के नाम से भी लोकचर्चा में हैं। चोल काल के समय में कुंभकोणम् मंदिर का भी निर्माण कार्य किया गया। ''12वीं से 13वीं शताब्दी तक में चोल काल की यह अन्तिम निशान के तौर पर माना गया है''[8], जहाँ नृत्य करती 108 करण मुद्राओं में से महज़ 24 करण की मूर्तियों को ही नाट्यशास्त्र के अनुसार सूचिबद्ध किया जा सका है, शेष के साथ कलाकार की भेदभाव समझे या अज्ञानता जिसके कारण भंगिमाओं में समानता नहीं प्राप्त हो सकी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ अधूरा छोड़ दिया गया है।

इनकी कुछ करणों में भ्रमित होते हुए एक सूची तैयार की गई है जिसके अनुसार यह स्पष्ट हो जाए कि कितने करण स्पष्टरूपी प्राप्त है और कौन–कौन से करणों में समानता नहीं बन पा रही है। विशेष कर चिदंम्बरम् और कुंभकोणम् के आकृतियों में, वहीं जहाँ कृष्ण पर आधारित मंदिर होने के साथ ही साथ शैव प्रतिनिधित्व का एक वैष्णव संस्करण इस मन्दिर में प्राप्त होता है। इस मन्दिर में पैनलों पर उकेरी गई आकृतियों की बात की जाएँ तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि नृत्य और संगीत का ताल मेल भगवान से लेकर मनुष्यों तक बना रहा है। यहाँ मन्दिर में सामान्य रूप से दो हाथों वाली आकृतियाँ ही प्राप्त हैं, जिनके द्वारा कुछ करण भी प्राप्त

---

8 C. Sivaramamurthi, OP.Cit. PP. 64-66

हो पाए हैं। परन्तु 108 करणों में से 109 करणों का उल्लेख प्राप्त है, जिनमें शुद्ध–अशुद्ध अलग–अलग श्रेणी बनाई गई है।

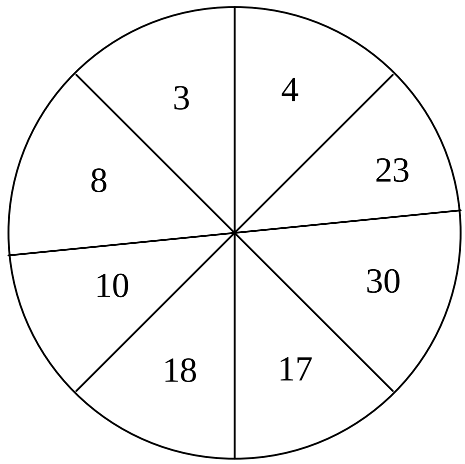

कुंभकोर्णम् मंदिर में दिये गये करणों की क्रमिक श्रृंखला में बहुत से असमानताएँ प्राप्त होती है। मन्दिर में मानो करणों की माला टूट कर बिखर गई हो। अधूरे करण को समझना फिर उनकी श्रृंखला को व्यवस्थित करना अत्यन्त ही चुनौती भरा कार्य रहा है। इस मन्दिर में सही क्रमों में मूर्तियों के न होने के कारण और उकेरी हुई मूर्तियों में करण की समानताओं में अन्तर इस मन्दिर के प्रभाव को कम कर देता है।

मन्दिर के वो करण जिनकी संख्या सही होने के कारण इनकी पहचान सही तरीके से की जा सकती है। नाम तो आंशिक रूप से क्षत–विक्षत हो गए हैं। इनकी कुल संख्या 8 है। 18 करणों की स्थिति के बारे में कहा जाए तो न इनके संख्या की स्थिति अच्छी है न तो नाम की आंशिक रूप से प्राप्त हुए इनके नाम और संख्या कुछ इस प्रकार हैं–

1. तलपुष्पपुटम (pu)

10(6).16 पृष्ठस्चस्तिक (sta) (kam)

17. दिक्स्वस्तिकम् (Dik) (sti)

2(5).25. उर्ध्वजानु (rdhvaja)

27. मत्तल्लि (li)

3(2).32. घूर्णित (Ghurni)

4(3).43. कटिभ्रान्तम् (ntam)

4(6).46. वृश्चिकरेचित (Ghurni)

5(4).54. वर्तितम् (tam)

63. पार्श्वक्रान्ता (rsuakra)

65. विद्यद्धन्तम् (abhrantam)

68. गजक्रिडितक (Gaja)

70. गरूडप्लुत (Ga)

7(9).79. अपक्रान्तम् (ntam)

84. प्रेंखोलित (nkh)

9(3).93. तलसंघट्टित (Tala)(gha)(tam)

100. विष्णुकान्तम् (snukra)

108. गंगावतरणम् (nam)

ये वो 23 करण है जिनके बारे में कोई पुष्टि नहीं हो सकी है। यहाँ पर इनके कोई चिन्ह प्राप्त नहीं हो पाए। प्राकृतिक सन्तुलन के बिगड़ने से ये मिट गए या इस मंदिर में कभी इन आकृतियों को बनाया ही न गया हो।

31. वलितम्

66. अतिक्रान्तम्

14.	उन्मत्तकम्	72.	परिवृतम्
15.	स्वस्तिकम्	73.	उर्ध्वजानु
18.	अलातकम्	75.	सन्नतम्
22.	भुजङ्गत्रासितम्	86.	स्खलितम्
30.	पादापविद्धकम्	89.	सिंहविक्रीडितकम्
40.	भुजंगत्रासितकम्	98.	उरूद्धत्तम्
44.	लतावृश्चिक	101.	संभ्रान्त
59.	आवर्तम्	99.	मदस्खलितकम्
60.	डोलापादम्	102.	विष्कम्भम्
105.	लोलितम्	107	शकटास्यम्

13 करणों की पहचान पद्मा जी द्वारा हाल ही में की गई है जो पुराने ईंट के पीछे कहीं दबे हुए प्राप्त हुए है। जिनमें से 10 मिले हैं और 3 अभी भी विलुप्त अवस्था में है।

3. विलुप्त करण

87. करिहस्तम्

97. एलकाक्रीडतम्

103. उद्वट्टित

10 करण जो हाल में मिले हैं।

12.	अर्धरेचितकम्	88.	प्रसर्पितकम्
26.	निकुंचितम्	90.	सिंहकर्षितम्
29.	रेचितनिकुट्टितम्	96.	निवेषम्
31.	वलितम्	35.	भुजंगत्रस्तरेचितम्
61.	वलितम्	85.	नितम्बम्

इस मन्दिर के विमान में दो प्रवेश द्वार हैं, एक दक्षिण में जिसे दक्षिणायम वत्सल कहा जाता है और दूसरा उत्तर में जिसे उत्तरायण वात्सल कहा जाता है। 5 रथों वाले पहियों में उनके आंतरिक नृत्य की कल्पना महसूस होती है, जिसमें ऐसा माना जाता है कि भगवान विष्णु एक सिरंगा (हिरण) के साथ प्रकट हुए और नृत्य किया। इसी कारण कृष्ण के रूप को मूर्ति कलाकारों ने चित्रित कर उनके द्वारा की गई करण की आकृतियाँ यहाँ गढ़ दी।[9]

[9] P.V. Jagadisa Ayyar, Op cit. p. 324